वर्तमान शैक्षिक समस्याओं के समाधान हेतु डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शिक्षा चिंतन की उपादेयता

*रश्मि श्रीवास्तव**

आज का भारतीय समाज शिक्षा के क्षेत्र में जिन समस्याओं से जूझ रहा है डॉ. राधाकृष्णन ने उसका अनुमान वर्षों पूर्व लगाया और अपनी दार्शनिक विवेचनाओं द्वारा तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त कमियों को उजागर करने के साथ-साथ भविष्य में हमें जिन कठिनाइयों से जूझना होगा, उसके समाधान के व्यवहारिक उपाय भी प्रस्तुत करते रहे। समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया औद्योगीकरण के विस्तार तथा विज्ञान व तकनीकी ज्ञान के विश्लेषण के बीच मानव जीवन का अंतर्मन जिस नीरसता में डूब जाएगा, उसे वह भलीभांति जानते थे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी दार्शनिक विवचेनाओं में आदर्श चरित्र, नैतिकता, मानवीयता तथा आध्यात्मिकता को सर्वोपरि रखा। हमें अवश्य ही उनके शिक्षा चिंतन से दिशा-निर्देश प्राप्त करने चाहिए। उनके विचार सर्वकालिक एवं व्यवहारिक हैं।

शिक्षा के महत्व से आज सम्पूर्ण विश्व परिचित है। देश के जन-जन में शिक्षा का प्रचार-प्रसार है। इसके लिए विश्व का प्रत्येक राष्ट्र ही नहीं, भारत देश भी प्रयत्नशील है, उसने इस दिशा में बड़े व्यापक प्रयास कर सकारात्मक परिणाम हासिल किए हैं। शिक्षा की सुविधा दूर-दराज के क्षेत्रों तक भी पहुँच सकी है। लेकिन इस तेज गति से की गई भागम-भाग में बहुत-सी चीजें हमारे हाथों से फिसली भी हैं और हम लम्बी दूरी तय करके भी अपने को ठगा-सा महसूस कर रहे हैं। यह ह्रास है हमारे बालक-बालिकाओं व अध्यापक- अध्यापिकाओं के नैतिक मूल्यों का। शिक्षा के प्रचार प्रसार के बीच हमारी व्यवस्थाओं ने तमाम ऐसे समझौते किए हैं, जिनके परिणाम सुखद नहीं हैं।

**विभागाध्यक्ष,* हीरालाल यादव बालिका डिग्री कॉलेज, सरोजनी नगर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

आम समस्या मुख्यत: दो स्तरों पर है, प्रथम शिक्षक वर्ग तथा द्वितीय विद्यार्थी वर्ग के लिए। अपनी आर्थिक सीमाओं व अन्य प्रशासकीय नीतिगत कारणों से भारत सरकार ने शिक्षा का एक बड़ा हिस्सा निजी क्षेत्रों को दिया है। इससे देश में शिक्षा का प्रसार तो तीव्र गति से हुआ किंतु यह प्रसार एक व्यवसाय के फलने-फूलने जैसा है। जिसके अनेक नकारात्मक प्रभाव शिक्षा के क्षेत्र में उभर कर सामने आए हैं। अधिकतम लाभ की आशा में विद्यालयी प्रबंधतंत्र ने योग्य के बजाए कम से कम वेतन पर शिक्षण के लिए तत्पर वर्ग को प्राथमिकता दी है, परिणाम हमारे सामने हैं। रोजगार के अन्य क्षेत्रों में विफल एक बड़े वर्ग ने रोजी-रोटी की मजबूरी में न्यूनतम वेतन में शिक्षण व्यवसाय का चयन किया है। बेमन से अपनाए गए इस व्यवसाय के प्रति वे उचित न्याय कर पाते हों ऐसा कम ही हुआ है और इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा है विद्यार्थी वर्ग पर। सरकारी संस्थानों में जहाँ शिक्षक के लिए परिस्थितियाँ बेहतर हैं, वहाँ शिक्षण व्यवसाय से जुड़े आकर्षक आर्थिक लाभ ने शिक्षक चयन प्रक्रिया को दूषित कर दिया है। परिणाम सामने है, वहाँ भी योग्यता के बजाए जोड़-तोड़ से एक व्यक्ति शिक्षण के व्यवसाय से जुड़ पाता है। आगे चलकर यह जोड़-तोड़ वह विद्यालयी परिसर में भी बिठाने में गुरेज नहीं करता और अनेक नकारात्मक प्रभाव स्वयं शिक्षक के माध्यम से विद्यालयों में उत्पन्न हो जाते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि एक शिक्षक जो कि शिक्षा व्यवस्था का प्रमुख आधार है, किन्हीं कारणों से यदि उसका विचार, उसके आचरण व नैतिक मूल्यों में गिरावट आई तो पूरी की पूरी व्यवस्था बिगड़ जाएगी और इसका सीधा नकारात्मक प्रभाव विद्यार्थियों पर पड़ेगा।

भारत की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में समस्याएँ यहीं तक सीमित नहीं हैं। समस्याएँ विद्यालयी पाठ्यक्रम तथा शिक्षण पद्धति व शिक्षा के मूलभूत उद्देश्यों में भी निहित हैं। अधिकतम जानकारी विद्यार्थी के मस्तिष्क तक किसी तरह पहुँचा दी जाए तथा विद्यार्थी उन्हें ठीक प्रकार से याद कर परीक्षा में अधिकतम अंक प्राप्त कर सकें, विद्यालय की कार्य पद्धति इसी के इर्द-गिर्द सीमित होकर रह गई है। विद्यार्थी जीवन की बहुमूल्य अवधि इसी रटने-रटाने की प्रक्रिया में कब बीत जाती है, पता ही नहीं चलता और अनेक सकारात्मक पक्षों की स्वत: अनदेखी हो जाती है। विद्यार्थी उन उच्च नैतिक आदर्शों को अपने जीवन में समाहित कर ही नहीं पाता जो उन्हें व्यक्तिगत हितों से ऊपर उठा सामाजिक हितों से जोड़ सकें, जो उन्हें भौतिक उपलब्धता के अतिरिक्त जीवन के अन्य पहलुओं की उपलब्धता के प्रति संवेदनशील कर सकें।

नि:सन्देह आगे चलकर इन सब का नकारात्मक प्रभाव देश की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था पर देखने को मिलता है। इन स्थितियों में आवश्यक प्रतीत होता हैं कि हम अपनी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था पर एक बार पुन: विचार करें और देश के महान शिक्षाविदों के सुझावों का दिशा निर्देश प्राप्त करें। इस दिशा में डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शिक्षा चिंतन की महत्ता की अनदेखी नहीं की जा सकती।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने लिखा था विश्व ने अनेक ऐसी सभ्यताओं को देखा है, जिन पर

युगों की धूल जम चुकी है। हमने मान लिया था कि कैसे भी विकास और परिवर्तन क्यों न हों, पाश्चात्य सभ्यता का ठोस ढाँचा स्वयं में टिकाऊ तथा स्थाई है, किंतु अब हम देख रहे हैं कि वह कितने भयावह रूप में अरक्षित है। ..... अनैतिक होना निरापद नहीं है। बुरी व्यवस्थायें अपने लोभ और अपने अहंकार के कारण अपना विनाश कर लेती हैं। जो विजेता और शोषक नैतिक नियम की चट्टान से टकराते हैं वे अंततोगत्वा अपने विनाश के खड्डे में जा गिरते हैं। अभी जब तक समय है– वैसे अब अधिक समय नहीं रह गया है– हमें चाहिए कि मनुष्य को, जो असहाय की भाँति अपने सर्वनाश की ओर दौड़ा जा रहा है, रोकने का यत्न करें।[1]

हम देखते हैं कि राधाकृष्णन नैतिकता को मानवीय गुणों में बड़ा ऊँचा स्थान देते हैं। धार्मिक निष्ठा तथा मानवतावादी विचारों से ओतप्रोत उनका शिक्षा दर्शन हमें तमाम ऐसे अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर दे सकने में सक्षम है। जिसकी खोज हमारे आज के शिक्षाविद् कर रहे हैं। डॉ. राधाकृष्णन के शिक्षा दर्शन का संक्षिप्त विवेचन निम्नवत् है। हमें अवश्य ही उनके चिंतन में निहित सकारात्मक पक्षों को अपनी शिक्षा व्यवस्था में स्थान देना चाहिए।

शिक्षा का अर्थ

डॉ. राधाकृष्णन शिक्षा को व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक विकास की प्रक्रिया मानते हैं तथा शिक्षा को ऐसा साधन मानते हैं जो व्यक्ति व समाज को प्रगति देता है एवं विकास को गति प्रदान करता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात 4 नवंबर सन् 1948 में डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में गठित विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, जिसका गठन उन्हीं के नाम पर किया गया था, उस आयोग ने शिक्षा के अर्थ एवं उद्देश्य के विषय में कहा था– शिक्षा केवल मस्तिष्क का प्रशिक्षण नहीं, अपितु आत्मा का प्रशिक्षण भी है, इसका उद्देश्य ज्ञान एवं विवेक दोनों प्रदान करना है।[2] आयोग द्वारा प्रस्तुत विचार डॉ. राधाकृष्णन के विचारों से प्रभावित थे।

डॉ. राधाकृष्णन का मानना था कि ज्ञान व्यक्ति के अंदर निहित है, वह स्वभावतः आत्मबोध करने में समर्थ है किंतु बाह्य विषयों की आसक्ति से व्यक्ति का आत्मतत्व कलुषित रहता है। यही कारण है कि मनुष्य सर्वदा समीपस्थ होने पर भी उस आत्मतत्व का ढके हुए दर्पण के समान दर्शन नहीं कर पाता है। शिक्षा द्वारा जब व्यक्ति के इंद्रिय एवं विषयजन्य रोगादि दोषों के दूर हो जाने पर दर्पण या जल आदि के समान चित्त प्रसन्न व शांत हो जाता है, तब अज्ञान से आवृत्त तथा उसमें विद्यमान यथार्थ तत्व का अनावरण हो जाता है, यही उसकी शिक्षा है। डॉ. राधाकृष्णन ने शिक्षा का महत्वपूर्ण आधार आध्यात्मवाद को माना और बताया कि शिक्षा शाश्वत जीवन की प्राप्ति का माध्यम है। शिक्षा के द्वारा नैतिक विकास संभव है तथा शिक्षा ही आत्मविकास

[1]राधाकृष्णन एस. – *एजुकेशन, पॉलिटिक्स एण्ड वार,* पृ. 35

[2]विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) – प्रथम खण्ड, भारत सरकार, दिल्ली, पृ. 81

करने का एक सबल साधन है। शिक्षा के द्वारा ही समाज में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाए जा सकते हैं। उन्होने इस बात पर सदैव ज़ोर दिया कि हमें अपनी नैतिक एवं आध्यात्मिक शक्ति बढ़ानी है, क्योंकि भौतिक तृष्णा पर विजय पाने के लिए यही एक अमोघ शक्ति है।

हमारी आज की समस्या भौतिक तृष्णा की ही तो है। हम अपने विद्यार्थियों को भौतिकता तथा आर्थिक लाभ-हानि की संकीर्ण मानसिकता से तभी निकाल सकते हैं, जब उनमें नैतिकता तथा आध्यात्मिकता की शक्ति का विकास कर सके। डॉ. राधाकृष्णन द्वारा शिक्षा के अर्थ संबंधी विवेचना इन्हीं तथ्यों पर ज़ोर देती है। हमें उनके निर्देश का आश्रय लेते हुए अवश्य ऐसे व्यवस्थापन पर ज़ोर देना चाहिए, जिससे उनका आचरण, विचार तथा व्यवहार सुसंस्कृत हो सकें।

शिक्षा के उद्देश्य

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की विशिष्टता का विकास करना है और एक वर्ग रहित समाज का निर्माण करना है। व्यक्ति की विशिष्टता के विकास के क्रम में उन्होंने स्वीकार किया कि शिक्षा ज्ञान प्राप्ति का माध्यम बने। ज्ञान के बिना आध्यात्मिकता का विकास संभव नहीं है, और ना ही विवेक की प्राप्ति। उनका मानना था कि इसी ज्ञान के लिए विभिन्न विज्ञानों, कला, साहित्य, दर्शन आदि का अध्ययन किया जाता है। वह शिक्षा के माध्यम से एक बालक में जिज्ञासा पैदा करना भी चाहते थे, उन्होंने कहा था– ''हमें उनके अंदर ज्ञान के संवर्धन के लिए उत्साह पैदा करना चाहिए।''[3]

वह एक बालक के विकास में दैहिक तत्वों की अपेक्षा आध्यात्मिक तत्वों को अधिक महत्त्व देते थे। उनका मानना था कि शिक्षा द्वारा इन आध्यात्मिक तत्वों का उचित प्रकाशन हो, जिससे कि वह अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान सकें, आत्मानुभूति कर सकें व अपने अंदर निहित विज्ञान को जान सकें।

डॉ. राधाकृष्णन ने ज्ञान के तीन स्तर बताए -

1 प्रत्यक्षात्मक ज्ञान (Perceptual Knowledge),
2. प्रत्ययात्मक ज्ञान (Conceptual Knowledge),
3. अंत: प्रज्ञात्मक ज्ञान (Intutine Knowledge)

इन तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्ति के साधन क्रमश: इंद्रिय बुद्धि एवं आत्मा हैं। उनका मानना था कि आधुनिक शिक्षा प्राय: एक व्यक्ति को ज्यादा से ज्यादा प्रत्ययात्मक स्तर का ज्ञान दे पाती है। किंतु शिक्षा का वास्तविक लक्ष्य तो यह है कि वह व्यक्ति को अंत: प्रज्ञात्मक ज्ञान के स्तर तक पहुँचाए। इसी से वास्तविक शांति मिलेगी और व्यक्ति पूर्णता को प्राप्त हो सकेगा।

यहाँ यह ध्यान देना होगा कि वह शिक्षा के व्यवहारिक उद्देश्यों की अनदेखी भी नहीं करते, वह शिक्षा के द्वारा बालक-बालिकाओं को जीने की कला का प्रशिक्षण भी देना चाहते हैं। उन्होंने कहा भी था–

''हमें अपने युवकों को व्यक्तिगत और स्वस्थ सामाजिक जीवन का प्रशिक्षण देना चाहिए।... ..उन्हें अच्छाई और सम्मान के उन अलिखित

[3]राधाकृष्णन सर्वपल्ली - *अकेज़नल स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स,* थर्ड सीरीज़, पृ. 85

नियमों का सम्भवत: निरीक्षण करना चाहिए, जिनको सदैव अच्छे लोगों ने महसूस किया है। यद्यपि उन्हें किसी विधान द्वारा लागू नहीं किया जाता।''[4]

उनका मानना था कि देश के नागरिकों के चरित्र के द्वारा एक राष्ट्र के भाग्य का निर्माण होता है, यदि हम एक महान राष्ट्र का निर्माण चाहते हैं तो हमें युवक एवं युवतियों को इस प्रकार प्रशिक्षित करना होगा कि उनमें चरित्रबल हो। चरित्रबल के विकास में विभिन्न उपायों के साथ उन्होंने एक बालक में आध्यात्मिकता के विकास को सर्वोपरि माना।

डॉ. राधाकृष्णन ने यह भी स्वीकार किया कि शिक्षा को एक माध्यम अवश्य होना चाहिए, जिससे व्यक्ति में अपनी बात कहने, अपने विश्वासों को व्यक्त करने, अपनी आस्थाओं के अनुसार जीने की क्षमता विकसित हो सकें। भाषा का ज्ञान इस दिशा में प्रथम प्रयास होता है। उनकी अध्यक्षता में नियुक्त विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की रिपोर्ट में कहा गया कि विश्वविद्यालयों को ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना चाहिए जो कि राजनैतिक, व्यावसायिक, औद्योगिक आदि क्षेत्रों का नेतृत्व कर सकें। डॉ. राधाकृष्णन इस बात के भी समर्थक थे कि शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य लोकतंत्र का संरक्षण एवं पोषण भी है। वह एक देशभक्त थे तथा देश के बालक-बालिकाओं में देश-प्रेम की भावना के विकास हेतु शिक्षा को एक उपयुक्त माध्यम मानते थे। वेदान्त की अवधारणा की स्वीकृति ने उन्हें संकीर्ण राष्ट्रीयता से ऊपर उठा विश्व बंधुतव का समर्थक बना दिया था। उनका मानना था कि भारतीय संस्कृति विश्व बंधुत्व की भावना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। अत: शिक्षा द्वारा इस संस्कृति का संरक्षण एवं पोषण कर विश्व बंधुत्व की भावना का भी विकास किया जाना चाहिए।

शिक्षा के उद्देश्य संबंधी उपरोक्त विचार शिक्षा के विस्तृत उद्देश्यों की ओर संकेत करते हैं और शिक्षार्थी को रटने-रटाने की प्रक्रिया के बीच जीवन के महत्वपूर्ण वर्षों के बीत जाने की जटिलता से बचा रख पाते हैं। एक बालक में आत्माभिव्यक्ति तथा अंतर्दीप्ति के विकास की महत्ता को रेखाँकित कर वह शिक्षा के उद्देश्यों को मानव जीवन के उद्देश्यों के साथ जोड़ सकने में सफल रहे। डॉ. राधाकृष्णन ने हमें बताया कि वास्तविक शिक्षा वह है जो मस्तिष्क को उन्मुक्त करें, चरित्र का विकास करें, मुक्ति दे और विश्वबंधुत्व की ओर ले जाए।

पाठ्यक्रम

एक शिक्षक होने के नाते डॉ. राधाकृष्णन ने भारत की शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त कमियों को बड़े करीब से देखा था। वह जीवन के उद्देश्यों को शिक्षा के साथ जोड़ते हुए ऐसे पाठ्यक्रम की कल्पना करते हैं जो बालक का सर्वांगीण विकास कर सके। उसे नैतिक, आदर्श चरित्र का स्वामी बना सके। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के माध्यम से भी पाठ्यक्रम के संबंध में उनके विचारों का विस्तृत प्रारूप हमें प्राप्त हो सका है।

[4]राधाकृष्णन सर्वपल्ली – *अकेज़नल स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स,* फर्स्ट सीरीज, पृ. 91

भारत की सामाजिक, आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम में उन्होंने निम्नलिखित विषयों को समाहित किए जाने का समर्थन किया–

(अ) **भाषा—**राष्ट्रभाषा हिंदी, मातृभाषा एवं प्रादेशिक भाषा, संस्कृत।

(ब) **कला, विज्ञान एवं तकनीकी विषय—** इतिहास भूगोल, मानव और सामान्य विज्ञान, गणित, राजनीति, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, साहित्य और दर्शन।

(स) **नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा—**डॉ. राधाकृष्णन का मानना था कि धार्मिक शिक्षा विश्वशांति, सुरक्षा एवं आत्मबोध के लिए अति आवश्यक है। अतः नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाया जाए। यहाँ वे किसी वर्ग विशेष की शिक्षा दिए जाने की बात नहीं करते बल्कि मौन प्रार्थनाओं, धार्मिक व्यक्तियों के जीवन, धार्मिक ग्रंथों से सार्वभौमिक महत्व के अंश और धर्म दर्शन की समस्याओं के अध्ययन को महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

(द) **वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक विषय—** आधुनिक युग की आवश्यकताओं तथा देश की भौतिक समृद्धि के लिए पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक, व्यवसायिक एवं औद्योगिक विषयों को अवश्य स्थान दिया जाए।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) की रिपोर्ट में उल्लेख किया गया था, हम अपनी सूचना और अनुभव के आधार पर सोचते, निर्णय और कार्य करते हैं। अगर ये सीमित हो जाए तो हमारा विश्व बहुत छोटा हो जाएगा। विद्यार्थी को सफल बनाना और प्रोत्साहित करना यथार्थता और सिद्धांतों का विद्वतापूर्ण उत्तम सूचना देना यह सब सामान्य शिक्षा का कार्य है, जिससे कि विद्यार्थी को प्रतिनिधि और उपयोगी तत्व मिल सकें, जिस पर विद्यार्थी अपने विचार, निर्णय और कार्य आधारित कर सकें, रुचि और महत्व के क्षेत्र में सचेत हो सकें।[5]

शिक्षण विधि

डॉ. राधाकृष्णन ने मानव प्रकृति के अनुसार बालक-बालिकाओं को मुख्यतः तीन वर्गों में विभक्त किया। 1. ज्ञान प्रधान प्रकृतियुक्त, 2. भावना प्रधान प्रकृतियुक्त, 3. कार्य प्रधान प्रकृतियुक्त। उनका मानना था कि ज्ञान प्रधान प्रकृति वाले विद्यार्थियों को भारत की परंपरागत शिक्षण पद्धतियों जैसे श्रवण, मनन, निदिध्यासन के द्वारा शिक्षा दी जानी चाहिए। भावना प्रधान प्रकृति के विद्यार्थियों के लिए उन्होंने साहित्य एवं ललित कलाओं इत्यादि के माध्यम से उल्लेखित कर सिखाए जाने का समर्थन किया। इसी प्रकार कार्य प्रधान प्रकृति के विद्यार्थियों को उन्होंने क्रियाविधि द्वारा सिखाए जाने की बात कही।[6]

डॉ. राधाकृष्णन के इन विचारों में हमें आधुनिक मनोविज्ञान के तत्व देखने को मिलते हैं। विद्यालयों में प्रयुक्त शिक्षण विधियों में बालक के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर अवश्य बल दिया जाना चाहिए। डॉ. राधाकृष्णन ने इस संदर्भ में भारत की परंपरागत

[5]विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) - पूर्व संदर्भित, पृ. 75

[6]शुक्ला, रमा (2000) - *शिक्षा के दार्शनिक आधार,* आलोक प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 280

शिक्षण विधाओं की महत्ता को भी हमारे समक्ष प्रस्तुत किया।

अनुशासन

डॉ. राधाकृष्णन विद्यार्थियों में बढ़ती हुई अनुशासनहीनता की प्रवृत्ति से अत्यंत दुखी थे। वे इसे सामाजिक ह्रास मानते थे। उनका मानना था कि किसी भी समाज को कल्याण मार्ग पर अग्रसर होने के लिए अनुशासित होना आवश्यक है। मनुष्य की मौलिक अच्छाई पर उनका विश्वास था, अतः वे यह मानते थे कि स्वयं आदर्श प्रस्तुत कर माता-पिता, अभिभावक तथा शिक्षक एक बालक को अनुशासन का पाठ सिखा सकते हैं। यहाँ यह भी ध्यान देना होगा कि उत्तम चरित्र को उन्होंने अनुशासन का मूल आधार माना था।

विभिन्न शिक्षाविदों ने अपने अनुभव के द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि अनुशासन को एक बालक के ऊपर से थोपा जाना संभव नहीं है। लेकिन आज भी विद्यालयों में शिक्षक शिक्षिकाएँ बालकों को अनुशासित आचरण सिखाने के लिए दबावपूर्ण स्थितियाँ बनाने में संकोच नहीं करते। क्या ही अच्छा हो कि एक शिक्षक स्वयं अपने आचरण से विद्यार्थियों के लिए एक उदाहरण बने और वे उसकी पुनरावृत्ति कर स्वयं एक अनुशासित छात्र बन सकें।

शिक्षक शिक्षार्थी संबंध

प्राचीन भारतीय परंपरा में शिक्षक का स्थान बड़ा ही सम्मानपूर्ण था। अपने शिष्य के उसका संबंध पुत्रवत होता था। वर्तमान परिस्थितियों में जब शिक्षण कार्य एक व्यवसाय मात्र होकर रह गया है, इस व्यवसायीकरण का प्रभाव गुरु शिष्य संबंध के इस पवित्र भाव पर भी पड़ा है। डॉ. राधाकृष्णन ने शिक्षा के क्षेत्र में हुई इस क्षति की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया, उन्होने समग्र मानव के विकास के लिए श्रद्धा, संयम और समर्पण के गुणों को आवश्यक माना था। अतः शिक्षक में भी वह इन गुणों को आवश्यक मानते थे। उन्होंने एक शिक्षक में निम्नलिखित गुण आवश्यक बताए–

(क) शांत स्वभाव एवं हँसमुख
(ख) निर्मल बुद्धि
(ग) विषय का ज्ञाता
(घ) नैतिक चरित्र
(ङ) नागरिक अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूक

एक आदर्श शिक्षक के लिए विद्या के प्रति प्रतिबद्धता की अनिवार्यता को प्रमाणित करते हुए उन्होंने आदर्श शिक्षक को मानव जाति के प्रति उत्तरदायी बताया। मानव मात्र के मानस को नैतिकता के मूल्यों तक ले जाना आचार्य का कार्य है।[7] एक विद्यार्थी का कर्तव्य है कि वह इस कार्य में आचार्य का सहभागी बने।

शिक्षक शिक्षार्थी संबंध की दृष्टि से डॉ. राधाकृष्णन भारत की पारम्परिक व्यवस्था के समर्थक थे। उनका कहना था कि गुरू, छात्र (शिष्य) के अज्ञान का आवरण हटाकर उसे ज्ञान की प्राप्ति कराता है और शिष्य अपने प्रयासों के द्वारा गुरू से ज्ञानोपार्जन कर अपने जीवन के परम

[7]पाण्डे रामशकल (2002) - *विश्व के श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री,* विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृ. 399

लक्ष्य मुक्ति को प्राप्त करता है। अत: अध्यापक तथा विद्यार्थी, ये शिक्षा के दो प्रमुख अंग हैं और इन दोनों के मध्य सम्पन्न होने वाली अंत:क्रिया शिक्षा है। उन्होंने शिक्षण को शिक्षक का व्यवसाय मात्र न मानकर उसका धर्म माना था। उनका कहना था कि शिक्षक छात्र का पथ प्रदर्शक है। एक शिक्षक को अपने शिष्य को उन सभी उपायों का सुझाव देना चाहिए जिनका अवलंबन करके शिष्य आत्मकल्याण की प्राप्ति कर लेता है। वह शिक्षण संस्थाओं को राष्ट्र का निर्माता मानते थे और इन बातों की उन्होंने पुरजोर वकालत की थी कि समाज के भविष्य क निर्माण करने वाले अध्यापकों को समुचित सम्मान दिया जाए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज का भारतीय समाज शिक्षा के क्षेत्र में जिन समस्याओं से जूझ रहा है, डॉ. राधाकृष्णन ने उसका अनुमान वर्षों पूर्व लगाया और अपनी दार्शनिक विवेचनाओं द्वारा तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त कमियों को उजागर करने के साथ-साथ भविष्य में हमें जिन कठिनाइयों से जूझना होगा, उसके समाधान के व्यवहारिक उपाय भी प्रस्तुत करते रहे। समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया, औद्योगीकरण के विस्तार तथा विज्ञान व तकनीकी ज्ञान के विश्लेषण के बीच मानव जीवन का अंतर्मन जिस नीरसता में डूब जाएगा, उसे वह भलीभाँति जानते थे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी दार्शनिक व्याख्याओं में आदर्श चरित्र, नैतिकता, मानवीयता तथा आध्यात्मिकता को सर्वोपरि रखा। वह इस बात को भलीभाँति मानते थे कि मानव जीवन के लक्ष्य व्यक्तिगत हितों से ऊपर, अति व्यापक है। शिक्षा को इन उद्देश्यों की प्राप्ति का एक साधन अवश्य होना चाहिए। इस आधार पर उन्होंने शिक्षा की उपयोगिता को व्यक्ति एवं समाज दोनों के संदर्भ में बताया। व्यक्ति के लिए शिक्षा को महत्वपूर्ण मानते हुए उन्होंने बताया कि शिक्षा से व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त होता है। अत: शिक्षा प्राप्त व्यक्ति का आचरण, विचार व व्यवहार सुसंस्कृत हो जाता है। उसका जीवन उत्कृष्ट हो जाता है। नि:संदेह इससे श्रेष्ठ समाज के निर्माण को बल मिलता है। श्रेष्ठ मानव समाज में ही एक उन्नत राष्ट्र एवं समृद्ध तथा शांतिमय विश्व की कल्पना निहित है।

धार्मिक शिक्षा की उनकी अवधारणा की भी वर्तमान संदर्भों में अपनी महत्ता है। इस शब्द के माध्यम से ऐसा प्रतीत होता है कि धर्म की शिक्षा दी जाए। यहाँ ध्यान देना होगा कि डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार धर्म कोई विशेष मत नहीं वरन् सत्य का बोध है। उनका यह विश्वास कि शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक ग्रंथों के माध्यम से ईश्वर की आस्था और जीवन में नैतिक नियमों का पालन अवश्य सिखाया जाए, वास्तव में बालक में अनुशासित आचरण व नैतिक मूल्यों के विकास का आधार है। सभी संप्रदायों में ऐसे अवतारी पुरुष हुए हैं, जिनकी गौरव गाथा सम्पूर्ण विश्व को प्रेरित कर सकती है। बच्चों के कोमल मस्तिष्क पर चरित्र के ऐसे गुणों के विकास हेतु धर्म की शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन है। इस पर प्रश्नचिन्ह क्यों? वास्तविकता यह है कि डॉ. राधाकृष्णन ने हिन्दुत्व में निहित भारत के आध्यात्मिक आदर्शों और आकाँक्षाओं का ओजस्वी शब्दों में वर्णन किया है। उन्होंने इन श्रेष्ठ आदर्शों को भारत की शिक्षा व्यवस्था में समाहित करने की वकालत

की। श्रेष्ठ नैतिक, चारित्रिक मूल्यों की प्राप्ति हेतु संपूर्ण मानव जाति संघर्षरत है। अत: इस पर प्रश्नचिन्ह की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। डॉ. राधाकृष्णन ने पूर्व तथा पश्चिम के शैक्षिक विचारों के श्रेष्ठ तथ्यों का समन्वय कर एक उत्कृष्ट शिक्षा व्यवस्था का प्रारूप हमारे सामने रखा था। इस दिशा में वह बाल मनोविज्ञान की भी अनदेखी नहीं करते। पश्चिमी मानवतावाद तथा भारतीय आध्यात्मवाद में समन्वय स्थापित कर वह एक ऐसे विश्व दर्शन को क्रियांवित होते देखना चाहते थे जिसमें विभिन्न मानव जाति के मध्य कोई दूरी न रहे। सभी सुख शांति और समृद्धि का जीवन जी सकें। अपने इस जीवन दर्शन के क्रियान्वयन हेतु उनके द्वारा प्रस्तुत शिक्षा दर्शन में भारतीय संस्कृति के प्रति सम्मान का भाव, धार्मिकता, नैतिकता तथा लोक कल्याण के विचारों के सामंजस्य एवं विश्व बंधुत्व का भाव निहित है। हिन्दू धर्म एवं उसकी उदारमयी मान्यताओं के प्रति स्नेह हमें तमाम ऐसी समस्याओं का हल स्वत: उपलब्ध करा देता है, जिसके लिए हमारे आज के शिक्षाविद् प्रयत्नशील हैं। समाज में शिक्षक के स्तर तथा उसके व्यक्तित्व के संबंध में भारत की परंपरागत अवधारणा का समर्थन कर उन्होंने हमें वह मार्ग दिखाया है जिससे शिक्षा के सबसे मजबूत स्तंभ को सही आधार मिल सकता है। शिक्षक पद का समाज में सम्मानपूर्ण स्थान तथा एक शिक्षक का आदर्श व्यक्तित्व ये दोनों बातें एक दूसरे की पूरक हैं। एक को स्थापित कर हम द्वितीय को स्वत: प्राप्त कर सकेंगे। आज यदि शिक्षक पद को सम्मानपूर्ण दर्जा प्रदान किया जाए, नि:संदेह परिवर्तित सामाजिक परिवेश में यहाँ हम आर्थिक लाभ की अनदेखी नहीं कर सकते, यहाँ उनके पद हेतु चयन की प्रक्रिया की निष्पक्षता भी आवश्यक होगी। आप देखें समाज का शिक्षित बुद्धिजीवी वर्ग स्वत: इस पद को प्राप्त करने का गौरव पाना चाहेगा। शिक्षित बुद्धिजीवी वर्ग के इस पद से जुड़ते ही उनके व्यक्तित्व का तेज इस व्यवसाय को सम्माननीय बना देगा। हमारे विद्यालय प्रशिक्षण केंद्र के साथ-साथ ज्ञान का मन्दिर बन सकेंगे। दूसरा पक्ष शिक्षक के आदर्श व्यक्त्वि का है, एक शिक्षक यदि अपने व्यक्तित्व में राधाकृष्णन द्वारा पोषित 'सादा जीवन उच्च विचार' की गरिमा को अपना सका, स्वयं के व्यक्तित्व में एक आदर्श शिक्षक के गुण समाहित कर सका तो शिक्षक के व्यक्तित्व के प्रभाव मात्र से यह पद समाज में सम्माननीय दर्जा प्राप्त कर लेगा। स्पष्ट है कि डॉ. राधाकृष्णन द्वारा प्राप्त दिशानिर्देश से वर्तमान भारतीय समाज की शिक्षा व्यवस्था में निहित तमाम समस्याओं का समाधान बड़ी सहजता से हो सकता है। उनके द्वारा प्रस्तुत शिक्षा चिंतन सर्वकालिक तथा व्यवहारिक है।